International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 29-09-2021, Accepted: 15-10-2021, Published: 30-10-2021
Volume 3, Issue 4, 2021, Page No. 10-11

भक्ति का उद्‌गमः न वेद न विदेश

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय 'भक्ति' के उद्‌भव एवं अरुणोदय के सन्दर्भ में विचार प्रस्तुत करना रहा है । 'भक्ति' के पौराणिक सन्दर्भों सहित इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करना ही प्रस्तुत शोध आलेख का ध्येय रहा है। वास्तव में यह शोध–आलेख भक्ति के उद्‌गम, परम्परा, विस्तार और विकास का कच्चा स्वरुप प्रस्तुत करता है ।

मूल शब्दः भक्ति, भगवान्, अनुराग, तत्व, ज्ञान, वेद

प्रस्तावना
भक्ति का अर्थ है शुद्धात्मक, भावुकतामय, विशेष व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण। भक्ति शब्द '**भज्**' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है – 'भजना'। भक्ति में भक्त भगवान की भक्ति अनन्य भाव से करता है। वास्तव में भगवान के प्रति अनुरक्ति ही 'भक्ति' कही जा सकती है। भक्ति में अनुराग की पराकाष्ठा होती है और
यह अनुराग भगवान के प्रति होता है। नारद ने भक्ति के स्वरूप को परमप्रिय स्वरूपा तथा अमृत स्वरूपा माना है, जिसे उपलब्ध कर मनुष्य अमर तृप्ति को प्राप्त कर लेता है। फिर उसे न शोक रहता है न द्वेष और न ही कोई कामना। वास्तविक भक्त वह है जो अनन्य है, जो ईश्वर प्रेम के अतिरिक्त सभी तत्त्वों का त्याग कर देता है और कवेल ईश्वर की शरण प्राप्त करता है।
भक्ति के उद्‌भव के विषय में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों का एक वर्ग भक्ति के बीज खोजता–खोजता इतिहास के गर्भ में घुसकर वेदों तक पहुँच गया है, जो दूसरा वर्ग भूगोल के विस्तार में पहुँचकर विदेश से भक्ति के नमूने खोज लाया है। ऐसे विद्वान भी हैं जो भक्ति को देश के किसी कोने में ही पा सके हैं और कुछ विद्वान भक्ति को सार्वभौम घोषित कर चुके हैं।
डॉ० मुंशीराम शर्मा, डॉ० हरवंशलाल शर्मा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक भक्ति का उद्‌गम वेदों से मानते हैं। उनके अनुसार, यदि वैदिक साहित्य में भक्ति–तत्त्व के बीज सन्निहित न होते तो उनके अंकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित होने का सुयोग परवर्ती काल में कैसे संभव होता।
'भक्ति' शब्द वेद–संहिता एवं ब्राह्मण ग्रंथों में नहीं पाया जाता, इस शब्द का प्रथम परिचय श्वेताश्वतर उपनिषद् में मिलता है। फिर भी विद्वानों ने वैदिक उपासना एवं उत्तरकालीन भक्ति को एकमेव सिद्ध करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में यह जानना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि – "गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों धर्म–साधनाओं का समुचित विवेचन होते हुए भी, अंत में भक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है।" इस आग्रह का कारण यह है कि विदेशी विद्वान एवं विदेशीयता से प्रभावित विद्वान यह प्रतिपादित करने पर तुले हुए थे कि भक्ति विदेश से दक्षिण भारत में आई और दक्षिण से इसका प्रचार उत्तर भारत में हुआ।
यह तो कहा जा सकता है कि भक्ति के संकेत वैदिक उपासना में मिलते हैं और 'भक्ति' शब्द उपनिषद् में पाया जाता है। परंतु 'उपासना' और 'भक्ति' एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं और न 'उपासना' के लोप होने पर 'भक्ति' का प्रचार हुआ है। यदि 'उपासना' ही भक्ति है, तो 'भक्ति' की आवश्यकता क्यों हुई? उपासना से ही काम क्यों न चल गया? वस्तुतः 'उपासना' साधन–त्रय (ज्ञान, कर्म, उपासना) के सहज समन्वय का एक अंग है और 'भक्ति' असमन्वित साधन–त्रय के बिखराव को फिर से अपने में समेट कर प्रकट होती है।
भक्ति को विदेशी देन मानने वालों में बेबर, कीथ और ग्रियर्सन के नाम मुख्य हैं। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार प्राचीन काल में ईसाइयों की एक बस्ती मद्रास प्रांत में थी और उन्हीं के प्रभाव से हिंदुओं में भक्ति–मार्ग आया जो फिर दक्षिण भारत से चलकर समस्त भारतवर्ष में फैल गया। इस निष्कर्ष में सांप्रदायिक दुराग्रह झलकता है। अतः भक्ति का उद्‌गम न तो वेद से है और न विदेश से। भक्ति भारतीय है और वेदोत्तर है। श्रीमद्‌भागवत् पुराण के अनुसार भक्ति का जन्म द्रविड देश में हुआ था, कनार्टक, महाराष्ट्र एवं गुजरात में अनेक उत्थान–पतन देखने के बाद वृंदावन में आकर भक्ति को पुनः जीवन मनोहर रूप प्राप्त हुआ। हिंदी समीक्षकों ने भी यह दोहराया है कि–

'भगति द्राविड़ ऊपजी
लाये रामानन्द।'

पं० रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के किसी सार्वभौम रूप के दर्शन किए हैं। उनके अनुसार 'उपनिषत्काल' के ज्ञानकाण्ड में दो मार्ग दिखाई पड़ते हैं। एक तो हृदय–पक्ष को बिल्कुल छोड़कर केवल बुद्धि या विशुद्ध ज्ञान को लेकर चला और दूसरा हृदय–पक्ष समन्वित ज्ञान को लेकर। इसी कर्म–परक ज्ञान मार्ग से, जिसमें कर्म के साथ बुद्धि और हृदय दोनों का योग आवश्यक ठहराया गया था आगे चलकर भक्ति का विकास हुआ। "भक्ति मीमांसा" में मन के उल्लास विशेष को भक्ति कहा गया है
–

"भक्तिर्मनस उल्लासविशेषः।।"

'भक्ति' का उद्‌भव वेदोत्तर पौराणिक परंपरा में हुआ है।
यह 'उपासना' मात्र नहीं है क्योंकि इसके लिए अवतार की कल्पना आवश्यक है। 'भक्ति' शुद्ध भारतीय वस्तु है। अपने मूल रूप में 'भक्ति वासुदेव कृष्ण के प्रति परानुरक्ति से उद्‌भूत हुई थी। शनैः शनैः इसका विस्तार विष्णु के अन्य अवतारों तथा आगे चलकर अन्य इष्टदेवों तक हो गया। विवेचकों ने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि 'भक्ति' निर्गुण–निराकार के प्रति भी हो सकती है।

वैदिक परंपरा में महाभारत काल तक आते–आते सात्वत जाति 'देवकी–पुत्र' कृष्ण को अपना आराध्य नायक मानने लगी थी। फलतः श्रीकृष्ण सोलह कलाओं के अवतार एवं मानव–मात्र के आराध्य बन गए। दक्षिण की लोक–परंपरा
एवं उत्तर की देव–परंपरा के सम्मिलन से कृष्ण के व्यक्तित्व में और भी विकास हुआ और वे 'अनुरक्ति' के साथ–साथ 'परानुरक्ति' के भी अधिकारी बन गए। 'भक्ति' की प्रतिष्ठा का यही बिंदु है, जिसको अनेक परंपराओं के संश्लेषण का परिणाम मानना चाहिए। इसमें ऋषित्व एवं देवत्व तो वैदिक परंपरा से आया है, परंतु बाल–रूप एवं किशोर–रूप लौकिक परंपरा की देन है।
मधुसूदन सरस्वती ने 'भक्ति रसायन' में चित्तद्रुति को महत्ता दी है और भक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है
–

"द्रुतस्य भगबद्धर्मात् धारावाहिकतां गता।
सर्वेशेमनसोवृत्तिः भक्तिरित्यभिधीयते।।"

'भक्ति' के इस संश्लिष्ट रूप की झलक आलवार संतों की रचनाओं में प्राप्त होती है। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ आदि सभी आचार्य आलवारों की सरस रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित थे। इन परिस्थितियों ने कृष्ण को आधार बनाकर प्रेम तत्त्व एवं बुद्धि तत्त्व का समन्वय किया और समस्त देश को वैष्णव भक्ति से आप्लावित कर दिया। यह ठीक है कि भक्ति का सूत्रपात 'देवकी–पुत्र' वासुदेव कृष्ण की आराधना से हुआ था। शास्त्रीय एवं लौकिक परंपराओं के सम्मिलन से भक्ति का शास्त्रीय रूप स्थिर हुआ। आगे चलकर 'भक्ति' और 'वैष्णवता' पर्याय बन गए, जिसमें श्रीकृष्ण के पश्चात् श्रीराम को लोकप्रियता प्राप्त हुई। श्रीराम भक्ति के दो रूप सगुण तथा निर्गुण हैं। हिंदी साहित्य में इनका प्रतिनिधित्व क्रमशः तुलसी तथा कबीर करते हैं। निर्गुण रामभक्ति का अलग विकास संत–मत में होता गया और राम–राम को मुख्य मानते हुए भी उस परंपरा में अन्य नामों को महत्त्व मिला एवं गुरु महिमा पर अधिक बल हो जाने से अनेक 'पन्थ' बनते चले गए। सगुण रामभक्ति ने कृष्णभक्ति से अपना संबंध निरंतर रखा और विष्णु के दसों अवतारों को उपास्य मानते हुए भी रामावतार एवं कृष्णावतार को विशेष आदर दिया। किसी–न–किसी रूप में इन दोनों अवतारों के चरित गुण–कीर्तन के आधार बने। परिस्थितिवश रामभक्ति का अवलंबन उन महापुरुषों तथा कवियों ने लिया जो समाज में परिवर्तन के लिए कटिबद्ध थे। कदाचित् इसलिए भी उन्होंने अपने विचार–भाव का विस्तार किया और वे राम–कृष्ण के साथ–साथ शिव–शक्ति, गणेश–गंगा, शारदा, हनुमान आदि उपास्यों के प्रति भी सात्विक भाव से नमन करते गए। राम का मर्यादावादी रूप भारतीय साहित्य में प्रायः निर्विरोध रूप से स्वीकृत हो चुका है। हिंदी के उत्तर–मध्यकालीन कवि 'रस–चर्चा' के लिए 'राधिका–कन्हाई' की लीला को अपनाते थे और समाज को साधना की ओर मोड़ने के लिए सीता–राम का सहारा लेते थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति–आंदोलन वर्तमान राष्ट्रीय आंदोलन के समान अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में – "ऐसे समय में भक्ति–समन्वित प्रेम और अहिंसा का मार्ग ही मानवता की रक्षा करने में समर्थ है।" क्षेत्रीय प्रवृत्ति के आधार पर भक्ति अलग–अलग प्रकार की छाप है तथापि अपने मूल रूप में वह एक है और अनेक पूर्व–प्रभावों की संश्लिष्ट, निर्मल एवं उदार अभिव्यक्ति है।

संदर्भ सूची

1. वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन, डॉ० मलिक मोहम्मद, प्रथम संस्करण, 1971, राजपाल एंड सन्ज़, पृष्ठ–35
2. भक्ति मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, 2
3. श्रीभगवद्भक्तिरसायनम उल्लास त्रयोल्लसितम्, श्री मधुसूदन सरस्तवी, प्रथम उल्लास, श्लोक 2
4. श्री वल्लभाचार्य – विजयेन्द्र स्नातक, प्रथम संस्करण 1992, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, पृष्ठ–69